दल-बदल रोधी कानून का दुरूपयोग न हो

हाल ही में राज्यसभा के सभापति ने जनता दल के दो नेताओं को राज्यसभा की सदस्यता के लिए अयोग्य ठहरा दिया है। सभापति वैंकेया नायडू का यह निर्णय जल्दबाजी में उठाया गया कदम जान पड़ता है। चाहे सभापति का यह निर्णय दल-बदल रोधी कानून के विरूद्ध न भी हो, तब भी उन्हें इस पर अवश्य विचार करना चाहिए था कि कहीं यह कानून की आत्मा के विरूद्ध तो नहीं है।

उन्होंने अपने निर्णय में दोनों नेताओं के मामले में विलंब होने और इसे विशेषाधिकार समिति के पास न भेजे जाने की भी बात की। सभापति का यह भी कहना है कि ऐसे मामलों का तीन माह के अंदर निपटारा न किए जाने को दल-बदल विरोधी कानून का विरोध करने के समान समझा जाएगा। यहाँ प्रश्न उठता है कि जनता दल के दोनों नेता अपनी गतिविधियों से सरकार के लिए खतरा नहीं बन रहे थे। फिर उन्हें अयोग्य घोषित करने में इतनी जल्दबाजी क्यों की गई है? इसका निर्णय संविधान की दसवीं अनुसूची के अंतर्गत लिया जाना था। और इस आधार पर लिया जाना था कि दोनों ही नेता किसी अन्य दल की रैली में शामिल होने से पहले, स्वेच्छा से अपने दल की सदस्यता से इस्तीफा दे चुके थे। इन सब आधारों पर सभापति को अपना निर्णय देने से पूर्व विशेषाधिकार समिति से सलाह-मशविरा अवश्य कर लेना था।

दल-बदल रोधी कानून के अंतर्गत अयोग्य ठहराये जाने की यह पहली घटना नहीं है। इसकी एक लंबी सूची है। कुछ समय पहले उत्तराखंड एवं तमिलनाडु में भी ऐसा हुआ है। परन्तु इन दोनों ही राज्यों में इसका प्रयोग तब किया गया, जब राज्य सरकार की स्थिरता के लिए खतरा पैदा हो गया था।

भारत में जिस प्रकार का दल आधारित संसदीय प्रजातंत्र है, उसमें सांसदों एवं विधायकों को चाहिए कि वे जनता के प्रतिनिधि एवं राजनैतिक दल के प्रतिनिधि के रूप में अपने अंदर संतुलन बनाए रखें। चूंकि हमारे विधान-मंडल के सदस्य

अपने और पार्टी के नाम पर पाए गए मतों से चुनकर आते हैं, इसका यह अर्थ नहीं कि दसवीं अनुसूची के प्रावधानों का फायदा उठाकर अपने मतभेदों के लिए उसे भुनाया जाए।

दल-बदल विरोधी कानून एक ऐसा कानून है, जो किसी दल का दिए गए जनता के समर्थन के लिए बीमे का काम करता है। इसका दुरूपयोग अपने मतभेदों को भुनाने के लिए नहीं किया जा सकता।

'द हिन्दू' में प्रकाशित संपादकीय पर आधारित।